धर्म और विज्ञान

साध्वी मंजूश्री

धर्म और विज्ञान शब्द सामने आते ही अनेकों प्रश्न उभरते चले जा रहे हैं। धर्म क्या है ? विज्ञान क्या है ? धर्म और विज्ञान परस्पर भिन्न हैं या अभिन्न ? दोनों में से प्राचीन कौन और अर्वाचीन कौन ? संसार को इनमें से किसकी देन अधिक है ? इत्यादि।

धर्म क्या है ?

'धर्म' यह बड़ा विचित्र और बड़ा पुराना शब्द हो गया है। इसीलिए इसको लाखों-करोड़ों व्याख्याएँ हो चुकी हैं। विज्ञान के युग में जीने वाले लोग धर्म को कुछ पुराने खयालात के लोगों का दकियानूसीपन समझते हैं और धार्मिक व्यक्ति को १६वीं सदी में जीने वाला मानते हैं।

पर किसी के कुछ भी मानने से दुनिया की बास्तविकता तो बदल जाने वाली नहीं है। रंगीन चश्मा (Goggle) लगा लेने से सूर्य की किरणें बदल नहीं जातीं, हमारी अपनी दृष्टि ही बदलती है।

तो क्या हमारा मान्य धर्म और वास्तविक धर्म अलग अलग हैं ? रंगीन नजरिया हटाएंगे, तो मालूम होगा कि 'धर्म वस्तु का स्वभाव हैं'।[1] आत्मा भी एक वस्तु है, इसका स्वभाव है—ज्ञान और दर्शन (जानना और देखना), जगत के रंगमंच पर ज्ञाता-द्रष्टा बनकर (समभावी बनकर) रहना। और हमने कुछ तथाकथित धार्मिकों के बाह्य क्रियाकाण्डों को धर्म मानकर वास्तविक धर्म की खिल्ली उड़ाई है। यह भी सच है कि जब-जब सम्प्रदाय ने धर्म का मुखौटा पहना है, तब-तब हिन्दू-मुसलमान, शिया-सुन्नी, शैव-वैष्णव, जैन-बौद्ध, रोमन कैथोलिक-प्रोटेस्टेन्ट, आदि धार्मिकों ने परस्पर खून की नदियाँ बहाई हैं और धर्म का नाम बदनाम हो गया है।

'बद अच्छा बदनाम बुरा।'

लेकिन जब हम यह कहते हैं कि पशुओं से अधिक चीज जो मनुष्य के पास है, वह है 'धर्म', तब हम व्यापक, सार्वभौम, विश्वजनीन धर्म की ही बात करते हैं।[2]

---

1. 'वत्थु सहावो धम्मो।.....समयसार।
2. आहार-निद्रा-भय-मैथुनञ्च सामान्यमेतत् पशुभिः नराणाम्।
   धर्मो हि तेषामाधिको विशेषो, धर्मेणहीना पशुभिः समाना॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म के लक्षण

किसी भी वस्तु के स्वभाव की पहचान उसके बाह्य लक्षणों से होती है। धर्म के भी विभिन्न लक्षण विभिन्न महापुरुषों ने बताए हैं। जैन दर्शन में वह क्षमा, मार्दव, आर्जव (सरलता), सत्य, संयम, तप, त्याग, निर्लोभता, लघुता और ब्रह्मचर्य—इन दशलक्षणरूप है।[1] तो मनुस्मृति में धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध –इन दशलक्षणरूप है।[2] श्रीमद्भागवत में धर्म के ३० लक्षण गिनाये गये हैं, जो उक्त दश लक्षणों का ही विस्तार माने जा सकते हैं।[3]

संख्या कुछ भी हो, आशय यह है कि धर्म सम्मान्य सामाजिक, नैतिक व आध्यात्मिक जीवन जीने की एक पद्धति है, कला है, उच्चतम नियमों की पारिभाषिक संज्ञा है।

विज्ञान

विशिष्टं ज्ञानं विज्ञानम्—विशेष ज्ञान को विज्ञान कहते हैं। धर्मशास्त्रों में भी ज्ञान से अगली श्रेणी 'विज्ञान' की मानी गयी है।[4] लेकिन भाषा विज्ञान की दृष्टि से देखा जाए, तो 'विज्ञान' के इस अर्थ में परिवर्तन आ गया है। धर्मशास्त्र-मान्य विज्ञान आत्मा को आत्मा के द्वारा होनेवाला विशेषज्ञान है। जबकि आधुनिक विज्ञान (Science) प्रयोगशाला में विभिन्न परीक्षणों से प्राप्त निर्णयात्मक ज्ञान है। कर्ता यहा भी आत्मा ही है, कारण में अन्तर है। विज्ञान के ये निर्णय बदलते भी रहते हैं, जबकि आत्मा की प्रयोगशाला में महावीर द्वारा प्राप्त निर्णय २५०० सालों से विज्ञान के लिए चुनौती बने हुए हैं। साथ ही विज्ञान के प्रकाश में वे सिद्धान्त शुद्ध स्वर्ण के समान और अधिक चमक भी उठे हैं।

उदाहरण के लिए पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति (पाँच स्थावर) की सजीवता कुछ समय पूर्व तक महावीर की एक मनगढ़न्त कल्पना मानी जाती थी, लेकिन आज विज्ञान ने इसे सत्य सिद्ध कर दिया है। श्री एच. टी. बर्सटापेन, सुगाते, बेल्मेन आदि वैज्ञानिकों के अनुसार बालक की वृद्धि के समान पर्वत भी धीरे-धीरे बढ़ते हैं[5] और एक दिन ऐसा भी आता है कि क्रमशः वृद्धावस्था प्राप्त ये पर्वत धराशायी हो जाते हैं, जमीन में धंस जाते हैं। अग्नि भी मनुष्य की भाँति ओक्सीजन (Oxygen) पर जिन्दा रहती है। पानी और वायु के विविध प्रकार के रूप, रंग, स्पर्श, आवाज और तापमान आदि से सिद्ध है कि ये भी सजीव हैं। भोजन, पानी, श्वास-प्रश्वास, लाज, संकोच, हर्ष, क्रोध, घृणा, प्रेम, आलिंगन, परिग्रहवृत्ति, सामिष-भोजन, निरामिष-भोजन, सोना, जागना आदि क्रियाओं से वनस्पति की सजीवता तो बहुत अच्छी तरह से सिद्ध हो चुकी है। सूडान और वेस्टइंडीज में एक ऐसा वृक्ष मिला है, जिसमें से दिन में विविध प्रकार की राग-रागिनियाँ निकलती हैं और रात में ऐसा रोना-धोना प्रारंभ होता है मानो परिवार के सब सदस्य किसी की मृत्यु पर बैठे रो रहे हों।[6] हवा में भी ऐसी शुभाशुभ आवाजें प्रायः सभी ने सुनी होंगीं। इसका अनुभव मैंने भी प्राप्त किया है। अतः सिद्ध है कि पाँचों स्थावर सजीव हैं।

दूसरा उदाहरण—पहले विज्ञान आत्मा के अस्तित्व पर विश्वास ही नहीं करता था, जब

---

1. समवायांग, 10
2. मनुस्मृति, 6/92
3. श्रीमद्भागवत्, 7/11/8-12
4. सवणे णाणे य विण्णाणे, पच्चक्खाणे य संजमे।–स्थानांग, 10
5. मुनिश्री हजारीमल स्मृति ग्रन्थ, अ० 2, पृ० 331. 6. वही, पृ० 331

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मा ही मान्य नहीं, तो पुनर्जन्म और परलोक को मानने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता, अतः नैतिक, सामाजिक और धार्मिक जीवनमूल्य भी थोथे प्रतीत होते हैं। विज्ञान की इस अनास्था से 'ऋण करो और घी पीओ' की प्रवृत्ति बढ़ी। अन्याय, अत्याचार और परराष्ट्र-दमन की नीतियों का बोलबाला हुआ। हिंसा का ताण्डव मचाने वाले विश्व संहारक शस्त्रास्त्रों की दौड़ में सब राष्ट्र 'अहम्अहमिकया' से आगे बढ़ने लगे।

यह जीवन का शाश्वत नियम है कि जब तक मनुष्य के मन में धर्म रहता है, तब तक वह मारने वालों को भी नहीं मारता, अपितु ईसा, मंसूर, सुकरात, महावीर आदि की भाँति क्षमा कर देता है। परन्तु, जब उसके मन में से धर्म निकल जाता है तो औरों की कौन कहे, पिता पुत्र को और पुत्र पिता को मार डालता है। अतः यह निश्चित है कि जगत् की रक्षा का करण धर्म ही है, विज्ञान नहीं।

तीसरा उदाहरण—भगवती सूत्रादि में लेश्याओं के वर्ण, गंध, रस, स्पर्श की शुभाशुभता, लेश्याओं की विद्युतीय शक्ति की कार्यक्षमता का जितना सूक्ष्म एवं विशद वर्णन मिलता है, उतनी गहराई तक विज्ञान अभी तक नहीं पहुँच पाया है, तथापि लेश्याओं के फोटो लेने में वह काफी अंशों तक सफल हो गया है।[1]

इसी प्रकार अवधि, मनःपर्यव और केवलज्ञान को वह मस्तिष्क के पिछले हिस्से में स्थित 'पीनियल आई' नाम ग्रंथि का विकास अथवा Sixth Sense का विकास मानने लगा है।

महावीर का 'स्याद्वाद सिद्धान्त' प्रसिद्ध वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्स्टीन का 'सापेक्षवाद' (Theory of Relalivity) बन गया है।

ये हमने दार्शनिक जगत् के उदाहरण देखे। आचारपक्ष के उदाहरण देखें तो वहाँ भी यही प्रतीत होगा कि महावीर के धर्म के नाम पर नंगे पाँव पैदल चलना, रात्रि-भोजन का त्याग करना, बिना छाना पानी काम में नहीं लेना, मुँह ढककर बोलना आदि जो अनेक छोटे-छोटे नियम हैं, उनकी धार्मिक ढकोसला कहकर या 'ये वैज्ञानिक युग से पहले की बातें हैं; आज के वैज्ञानिक युग में ये फिट नहीं बैठतीं' इत्यादि कहकर मखौल उड़ाई जाती थी। आज ये ही बातें विज्ञान ने स्वीकार कर ली है। आक्युप्रेशर पद्धति से पाँवों को दबाने का वर्तमान विज्ञान ही महावीर का नंगे पाँव पैदल चलने का विज्ञान है। इसी प्रकार अन्य बातें भी स्वास्थ्य की दृष्टि से हितकर मानी जाने लगी हैं।

इसीप्रकार यह भी हर्ष का विषय है कि आज वैज्ञानिक आत्मा और पुनर्जन्म, लोक और परलोक को मानने लगे हैं।[3] यह विश्वास करने लगे हैं कि आध्यात्मिक जगत् भौतिक जगत् की अपेक्षा अधिक महान् और सशक्त है।[4] सर ए. एस. एडिंग्टन मानते हैं कि चेतना ही प्रमुख आधारभूत वस्तु है। पुराना नास्तिकवाद अब पूरी अरह मिट चुका है और धर्म, चेतना तथा मस्तिष्क के क्षेत्र का विषय बन गया है। इस नई धार्मिक आस्था का टूटना संभव नहीं है।[5]

---

1. मुनि श्री हजारीमल स्मृति ग्रन्थ, पृ० 336
2. वही, पृष्ठ 337-338
3. इस विषय के विशेष जिज्ञासु देखें—'विज्ञान अने धर्म'—मुनि श्री चन्द्रशेखरविजय जी।
4. सर ओलिवर लॉज—मुनि श्री हजारीमल स्मृति ग्रन्थ, अ० 2, पृ० 331 पर उद्धृत।
5. साइन्स एण्ड रिलिजन—मुनिश्री हजारीमल स्मृति ग्रन्थ, अ० 2, पृ० 331 पर उद्धृत।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूसरे उदाहरण के रूप में अजीव को लीजिए। महावीर ने धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल और पुद्गल—ये पाँच भेद अजीव के माने हैं। अब विज्ञान इन्हें ईथर (Ether), गुरुत्वाकर्षण (gravitation), स्पेस (space), Time और Matter के नाम से पहचानने लगा है।

साथ ही यह भी सिद्ध हो गया है कि ये सभी द्रव्य न तो एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं और न ही एक दूसरे में परिवर्तित होते हैं।[1] इससे जैन दर्शन के इस सिद्धान्त की पुष्टि होती है कि सभी द्रव्य स्वतंत्र परिणमन करते हैं, कोई किसी के अधीन नहीं है।

यह केवल 'महावीर'—'जैनधर्म से संबंधित महावीर' की चर्चा हुई।

अन्य धर्मों के विषय में भी हम चिन्तन करें तो पायेंगे कि उनमें भी वैज्ञानिक चिन्तन-बिन्दु भरे पड़े हैं। आज से ४० वर्ष पूर्व ढाका विश्वविद्यालय के दीक्षान्त भाषण में डॉ० भटनागर ने कहा था कि 'जर्मनी को अगर वेद न मिले होते तो वे लोग विज्ञान के क्षेत्र में नेता न बन सके होते।'

भौतिक-विज्ञान यह मान्य कर चुका है कि 'ऋग्वेद में इन्द्र की प्रार्थनाओं में विद्युत्शास्त्र (Electric Science) है। वरुण की प्रार्थनाओं में जल विज्ञान है। पवमान की प्रार्थनाओं में सब gases का विज्ञान है। पूषन् (सूर्य) की प्रार्थनाओं में अणु-विज्ञान है और अग्नि की प्रार्थनाओं से समग्र ऊर्जा-विज्ञान है।'

मैंने कहीं पढ़ा है कि पाणिनि-व्याकरण के आधार पर वैज्ञानिकों ने वायुयान-विज्ञान का विकास किया है।

नैयायिकों-वैशेषिकों और सांख्यों की सृष्टि-विकास सम्बन्धी मान्यताएँ भी विज्ञान के विकास में उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

यह एक धार्मिक व्यक्ति की वैज्ञानिकता ही है कि वह ग्राम और नगर के सभी प्रकार के प्रदूषणों से दूर एकान्त जंगल की गिरि-कंदरा में निवास करना चाहता है। इसके विपरीत, विज्ञान के कारण प्रदूषण बढ़ता ही जा रहा है।

उदाहरणों का उक्त लेखा-जोखा यद्यपि इस लघुकाय निबन्ध में कुछ विस्तृत प्रतीत होता है, तथापि विषय के स्पष्टीकरण में अतीव आवश्यक है। उक्त उदाहरणों से निर्णीत हो जाता है कि 'विज्ञान' आत्मा को आत्मा द्वारा भी हो सकता है, और बाह्य परीक्षणों द्वारा भी। लेकिन धर्म आत्मा की ही वस्तु है, प्रयोगशाला की नहीं, प्रयोगशाला-जन्य विज्ञान की भी नहीं।

धर्म और विज्ञान

यह तुलना आत्मधर्म और प्रयोगशाला-जन्य विज्ञान की है। यह विज्ञान हमें भौतिक उत्कर्ष की ओर ले जाने में सहायक है, इन्द्रियों और मन की विषय-सन्तुष्टि/सम्पुष्टि में मददगार है, आराम-परस्त जिन्दगी (Luxurious life) इसी के कारण मनुष्य जी पाता है तथा सुख और सुविधाओं का अंबार

---

1. मुनिश्री हजारीमल स्मृति ग्रन्थ, अ० 2, पृ० 332

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लगा पाता है। यह विज्ञान व्यक्ति को वासनाओं के, आशा-तृष्णा के गर्त्त में गिराता है, तो समष्टि को तृतीय महायुद्ध के कगार पर ले जाकर खड़ा भी कर देता है।

किसी ऋषि ने कभी कहा था—

अधर्मेणैधते लोकस्ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्नान् जयति, समूलस्तु विनश्यति॥

अर्थात् अधर्म की सहायता से मनुष्य ऐश्वर्य-लाभ करता है, अपने मनोरथ सिद्ध करता है, अपने शत्रुओं को जीतता है परन्तु अन्त में समूल ही नष्ट हो जाता है।

आज यदि हम इस श्लोक में 'अधर्म' के स्थान पर 'विज्ञान' शब्द का प्रयोग कर दें, तो श्लोक बनेगा—

विज्ञाने नैधते लोकस्ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्नान् जयति, समूलस्तु विनश्यति॥

तात्पर्य स्पष्ट है कि विज्ञान के द्वारा मनुष्य भौतिक-सामग्री और तज्जन्य-सुख प्राप्त कर सकता है, शत्रु पर विजय भी प्राप्त कर सकता है, लेकिन अन्तिम हश्र के लिए भी आज उसे तैयार रहना है। यह अन्तिम हश्र मनुष्य जाति का समूल सर्वनाश—आज सर्वविदित सुपरिचित तथ्य है।

अस्तु, विज्ञान सिर्फ एक उपलब्धि है। इस उपलब्धि (योग) का क्षेम, इस उपलब्धि का संविभाग और इस उपलब्धि में मन को संतुलित करने की कला तो 'धर्म' ही सिखाता है। विज्ञान के कारण बढ़े हुए वैर-विरोध धर्म से ही समाप्त हो सकते हैं।[1]

सम्प्रदायों के दीवट (दीपाधार) चाहे कितने भी हों, लेकिन धर्म की ज्योति एकसी होती है, वह शाश्वत तत्त्व है। वैज्ञानिक युग में बल्ब के रंग अलग-अलग होने से ज्योति के रंग भी तदनुसार परिवर्तित प्रतीत होते हैं। यही सम्प्रदायों के जन्म का इतिहास है। और यह विविधता ज्योति की अपूर्णता या विविधता नहीं कहला सकती।

लेकिन वैज्ञानिक जगत में दृष्टिक्षेप करने पर प्रतीत होता है कि विज्ञान तो सदा-सर्वदा के लिए अपूर्ण था, है और रहेगा। इसी कारण, गैलीलियो ने कहा कि पृथ्वी घूमती है तो आइन्स्टीन ने कहा कि पृथ्वी स्थिर है। इस तरह एक दूसरे के निर्णयों को काटते रहने के कारण वहां भी सम्प्रदायों का जन्म होता है। क्योंकि विज्ञान अपूर्ण है, अतः यह भेद-रेखा कभी मिटने वाली नहीं है। विज्ञान-ज्योति कभी पूर्ण होने वाली नहीं है।

इसलिए विज्ञान यदि धर्म-ज्योति के प्रकाश में चले, तो विश्व के लिए वरदान सिद्ध हो सकता है।

निष्कर्ष

ये कुछ भेद होने पर भी हम यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि जिस प्रकार भौतिक विज्ञान से प्राप्त लाभ देश-काल-जाति-देश-भाषा-आचार आदि की सीमाओं से परे हैं, इसी प्रकार धर्म से प्राप्त लाभ भी इन सब सीमाओं से परे हैं—इस दृष्टि से दोनों ही समष्टि-परिव्याप्त हैं। यदि एक-दूसरे में भी परिव्याप्त हो जाएँ, तो दोनों की सहायता से धरती पर ही स्वर्ग उतर आए। जीव की जिजीविषा को सुख-पूर्वक विकास का अवसर मिले। यही तो धर्म का आध्यात्मिक उत्कर्ष है और विज्ञान का भौतिक उत्कर्ष। सौन्दर्यात्मक और आध्यात्मिक उत्कर्ष पूर्ण मानव के निर्माण में योग देता है। □

---

1. नहि वेरेन वेरानि, सम्मति न कदाचन। अवेरेन च सम्मति, एस धम्मो सनन्तनो॥ —धम्मपद

www.jainelibrary.org For Private & Personal Use Only